

मीराबाई की गीति-कला

डॉ. आर.पी. वर्मा,

असि. प्रो एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,

राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,

जनपद-उन्नाव, उ.प्र.

जब मानव-हृदय भावों से परिपूर्ण होकर छलकने लगता है तो भावों की इसी छलकन से काव्य का जन्म होता है। काव्य-प्रणयन के समय कवि की तीन अवस्थाएँ हो सकती हैं। पहली अवस्था में वह विषय से स्वयं तादात्म्य कर लेता है, अर्थात् अपने ही माध्यम से वह अपनी बात कहता है। इस प्रकार का काव्य अन्तर्वादी काव्य (Personal or subjective Poetry) कहलाता है। दूसरी अवस्था में कवि किसी तटस्थ दर्शन की भाँति दूसरे के माध्यम से अपने विषय का विर्णन करता है। इस प्रकार का काव्य बाह्यवादी (Impersonal or objective Poetry) होता है। तीसरी अवस्था में कवि न तो पूर्ण रूप से अन्तर्वादी ही रह पाता है न बाह्यवादी, बल्कि इन दोनों का वह समन्वय कर लेता है। इस प्रकार का काव्य नाटक काव्य (Dramatic Poetry) कहलाता है। गीति-काव्य अन्तर्वादी काव्य के अन्तर्गत आता है, अतः इस पर कुछ विचार करना अपेक्षित है।

अन्तर्वादी काव्य में कवि आत्मनिष्ठ होता है, अर्थात् अपने ही माध्यम से अपनी बात कहता है इसीलिए इसमें भावतत्व का प्राधान्य होता है और कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से मुखरित होता है। भावों की प्रबलता, व्यक्तित्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति और भाषा की विशदता आदि अन्तर्वादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ होती हैं। हडसन ने अन्तर्वादी काव्य की व्याख्या इन शब्दों में की है –

‘There is the Poetry in which the poet goes down in to himself and finds his inspiration

and his subjectr in his own experience, thoughts and feelings.’

गीति का स्वरूप

गीति हिन्दी का ही नहीं, विश्व-साहित्य का प्रियतम काव्यरूप है, इसीलिए इसकी परम्परा किसी न किसी रूप में अनादिकाल से चली आ रही है। संस्कृत-साहित्य में गीति की यह परम्परा काफी पुरानी है। गीति का विवेचन भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों काव्यशास्त्रों में मिलता है, किन्तु पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। पाश्चात्य साहित्य में हेगल (Hegal), अर्नेस्ट रिस (Ernest Rhys), जॉन ड्रिंक वाटर (John Drink Water), गमर (Gummere) और हडसन (Hudson) आदि प्रमुख हैं। इन्होंने गीति की परिभाषा इन शब्दों में की है—

1. गीति-काव्य में किसी ऐसे व्यापक कार्य का चित्रण नहीं होता जिससे वाह्य संसार के विभिन्न रूपों एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन हो। इसमें तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप-विशेष के प्रतिबिम्ब का निदर्शन होता है। इसका एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरंगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना ही है। हेगल

2. गीति—काव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण आधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।
3. गीति—काव्य एक ऐसी अभिव्यंजना है जो विशुद्ध काव्यात्मक (भावात्मक) प्रेरणा से व्यक्त होती है तथा जिसमें किसी अन्य प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती।
4. गीति—काव्य वह अन्तवृत्ति—निरुपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है तथा जिसका सम्बन्ध घटनाओं से नहीं, अपितु भावनाओं से होता है और जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था में निर्मित होती है।

गमर

5. 'वैयक्तिकता की छाप गीति—काव्य की सबसे बड़ी कसौटी है, किन्तु वह व्यक्ति—वैचित्य में सीमित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होता है जिससे प्रत्येक पाठक इसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सके।'

—हडसन

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से गीति—काव्य के निम्नलिखित तत्व प्राप्त होते हैं—

1. आत्माभिव्यंजन
2. संगीतात्मकता
3. अनुभूति की पूर्णता अथवा भाव—प्रवणता
4. भावों का ऐक्य

इन सभी तत्वों का समन्वय करके गीति की यह परिभाषा दी जा सकती है—

गीतिकाव्य कवि के अन्तर्गत की वह स्वतः प्रेरित तीव्रतम भावाभिव्यक्ति है जिसमें विशिष्ट

पदावली का सौन्दर्य, अनुभूति के ऐक्य एवं संगीतात्मकता के योग से द्विगुणित होता है।

मीराँ की गीति—कला का सही मूल्यांकन करने के लिए उपर्युक्त तत्वों पर इनके गीतों का परखना अपेक्षित है और आवश्यक भी। अतः हम संक्षिप्त रूप से इन तत्वों का परिचय देकर इनके आधार पर मीराँ की गीति—कला का विश्लेषण करेंगे।

यह कहा जा सकता है कि जब सम्पूर्ण काव्य ही आत्माभिव्यंजक है तो उसका 'गीति' यह भेद क्यों किया जाय ? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर यह है कि काव्य एक विशाल भूखंड है और गीति उसका एक लघु खंड। अतः कह सकते हैं कि गीति काव्य केवल कवि के आन्तरिक विश्व की प्रत्यक्ष रूप में बाह्य भिव्यंजना है।

यों तो कवि की इस आत्माभिव्यक्ति में उसकी अपनी ही निजी भावनाएं होती हैं, किन्तु काव्य—कला के कारण ये भावनाएँ उसकी न रहकर सबकी बन जाती हैं। यदि वे केवल कवि के व्यक्तित्व तक ही सीमित रह जायेगी तो पाठकों का उनके साथ साधारणीकरण न हो सकेगा और तब वह गीति—काव्य न बनकर निरा अपना लेखा—जोखा रह जायेगा। इसीलिए कवि को अपने गीतों में अपनी ऐसी—ऐसी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए जो सार्वकालिक और सार्वभौमिक हों।

मीराँ के गीतों में इनकी अपने ही जीवन की परिस्थितियां मुखरित हुई हैं। इनके गीतों में इनकी दो प्रकार की भावनाएँ मिलती हैं—अनुरागमयी और विषादमयी। इनका कृष्ण के प्रति अटूट और अपार अनुराग है, इसलिए इन्होंने किसी बन्धन को नहीं स्वीकार किया। विष का प्याला हंसते—हंसते पी लिया, भुजंग को गले में माला की तरह धारण कर लिया, राजप्रसाद का परित्याग करके साधु—संगति को अपनाया, किन्तु फिर भी इनके अनुराग में कोई अन्तर नहीं आया बल्कि वह तो और बढ़ता ही गया। मीराँ ने स्पष्ट

रूप से घोषणा कर दी कि उनका पति वही है जिसके सिर पर मोर-मुकुट है।

मीराँ का हृदय सरल और निष्कपट था, इसीलिए इनके गीतों में प्रसाद गुण का प्राधान्य है। ये अपना अनुराग और विषाद सरलतम भाषा में व्यक्त करती हैं, किन्तु उनका प्रभाव मानस-स्पर्शी होता है। यथा—

आली री म्हारे बाण पड़ी।

चित्त चढ़ी म्हारे माधु मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी।

कबरी ठाड़ी पथ निहारौं, अपने भवण खड़ी।।

अटक्यौं प्राण साँवरों प्यारो, जीवन मूर जड़ी।

मीराँ गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्यौं बिगड़ी।।

इन कतिपय पंक्तियों में मीराँ ने अपने जीवन का समग्र चित्रण कर दिया है। इनका कृष्ण से अनुराग हो गया है और वह अनुराग विरह की छाया से विषादमय भी बन गया है। एक विरहिणी की भाँति ये अपने प्रियतम का पंथ निहार रही हैं, किन्तु इनके इस अनुराग के कारण समस्त समाज इनके विरुद्ध है। सब कहते हैं कि मीराँ बिगड़ गई हैं— पथ-भ्रष्ट हो गई है। कितने सरल और सीमित शब्दों में मीराँ ने अपने जीवन की विवशता और सूक्ष्म ढंग से व्यक्त की है।

इसी प्रकार विरह के पदों में मीराँ का अपना विषाद है, अपनी विरहिणी आत्मा का चीत्कार है—

डारि गयो मनमोहन पासी।

**आंबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरा मरण अरु
जग केरी हाँसी।**

**बिरह की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्राण तजूँ करवत
ल्यूँ कासी।**

**मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी
दासी।**

गीति-काव्य का दूसरा तत्व है संगीत। यह कहना कि संगीत गीति का प्राण है, अनुचित नहीं, क्योंकि जिस प्रकार गीति-काव्य मानस की रागात्मिकता वृत्ति से उद्भूत होता है, उसी प्रकार

संगीत का भी उस वृत्ति से निकटतम सम्बन्ध है। भाव और संगीत दोनों के मूल में ही हृदय के मनोवेगों की तीव्रता रहती है। यदि गीति शब्द की रचना के लिए भाव अनिवार्य है तो उसकी प्रभावोत्पादकता के लिए संगीत भी उतना ही आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान आल्फ्रेड आस्टिन ने गीति-काव्य में संगीत की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए कहा है कि किसी भी संगीत-विहीन कविता को कविता नहीं कहा जा सकता, चाहे उसमें अन्य कितनी ही विशेषताएँ हों—

‘No verse which is unmusical or obscure can be regarded as poetry, whatever qualities it may possess.’

इसके विरुद्ध पं० रामखेलावन पाण्डेय का मत है। ये लिखते हैं—

“संगीतमय अथवा संगीतात्मक होना गीति-काव्य की अन्यतम कसौटी नहीं।”

हमारे मत में गीति-काव्य में संगीत का होना अनिवार्य है, भले ही वह किसी प्रकार का संगीत हो—चाहे वर्णों का हो, चाहे स्वरों का और चाहे नाद का।

मीराँ के गीतों में संगीतात्मक का पूर्ण रूप से समावेश है। भावों के अनुरूप ही संगीत की योजना है। मीराँ का प्रत्येक पद किसी न किसी राग से सम्बद्ध है। उदाहरणार्थ —

‘बस्यौं म्हारे गेणण माँ नंदलाल।

**मोर मुगट मकराक्रत कुंडल अरुण तिलक
सोहाँ भाल,**

**मोहण मूरत सांवरा सूरत गेणा बण्या
मिशाल।**

**अधर सुधारस मुरली राजां उर बैजन्ती
माल।**

**मीराँ प्रभु सन्तां सुखदायी भक्त बछल
गोपाल।’**

इस पद में राग हमीर है और —

‘म्हा मोहरण रो रूप लुभाणी ।
सुन्दर बदन कमल दल लोन बांका
चितवण पेणा समाणी ।
जमणा किनारे कान्हा धेनु चरावां बंशी
बजावा मीठां वाणी ।
तन मन धन गिरधर पर वारां चरण कंवल
मीरा बिलमाणी ।।’

जिस मोर-मुकुट-धरी के लिए वे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुकी है, उसके प्रसंग मात्र से ही मीरा के हृदय का भावाभिभूत हो जाना स्वाभाविक ही है। यही भावावेश उनके पद में पाया जाता है। यथा—

“जोगी मत जा, मत जा मत जा, पाँड़ परँ मैं तेरी
चेरी हौ।”

इस पद में अनुभूति की पूर्णता वीप्सा अलंकार के माध्यम से व्यक्त हुई है। कितनी विवशता भरी है इस पंक्ति में और इस अभिव्यक्ति में। मीरा की अनुभूति सर्वत्र पूर्ण विशिष्ट है। यही कारण है कि वह श्रोता अथवा पाठक के हृदय को तुरन्त कचोट लेती है। एक और उदाहरण देखिये—

माई म्हाँ गोविन्द गुण गाणा ।
राजा रुढ्या नगरी त्यागा, हरि रुढ्याँ कहें जाणा ।
राणौ भेज्या विषरों प्याला, चरणामृत पी जाणा ।
काला नाग पिटारयाँ भेज्या, सालिगराम पिछाणा ।
मीराँ तो अब प्रेम दीवाँणी, सांवलिया वर पाणा ।

मीराँ के गीतों में भावान्विति भी बराबर मिलती है। कहीं-कहीं तो एक ही भाव के अनेक प्रकार से पुष्ट करती है ताकि गीति का प्रभाव सबल बन सके। यथा—

‘हरि थैं हर्या जग री भीर ।
द्रोपत री लाज राख्याँ थे बढ़ायोँ चीर ।
भगत कारण रूप नरहरि, धार्याँ आप सरीर ।।
बूड़ताँ गजराज राख्याँ, कट्याँ कुंजर भीर ।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, हराँ म्हारी भीर ।।’

इसमें कृष्ण की भक्त-वत्सलता का अनेक कथाओं द्वारा समर्थन किया गया है। इस प्रकार से गीति का प्रभाव कई गुना हो गया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—

संदर्भ

1. मीरा बाई—डॉ. सुधाकर अदीब, पृ. 10
2. मीरा का जीवन—अरविन्द सिंह तेजवान, पृ. 113
3. कृष्णभक्त मीरा और उनका काव्य—डॉ. आर.पी. वर्मा, पृ. 119
4. मीरा बाई और उनकी पदावली—प्रो. देशराज सिंह भाटी, पृ. 91
5. भक्तकालीन संत साहित्य—प्रो. वीरेन्द्र नारायण यादव, पृ. 41
6. हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 09
7. हिंदी साहित्य का वस्तुपरख इतिहास—डॉ. राम प्रसाद मिश्र, पृ. 112
8. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—विजयपाल सिंह, पृ. 139